शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Year -1
Vol -8
June
2024

संविधान का निर्माण एक नए युग की शुरूआत : एक विवेचनात्मक अध्ययन

गौरव वर्धन सिंह
सहायक आचार्य, इतिहास (गेस्ट फैक्ल्टी)
राजकीय महाविद्यालय फूलिया कलाँ, शाहपुरा (राज.)

प्रस्तावना

भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 को अस्तित्व में आया। यह दुनिया का सबसे लंबा संविधान है। यदि अपने देश के आकार और विविधता पर ध्यान दें तो इसकी लंबाई व पेचीदगी को आसानी से समझ सकते हैं। स्वतंत्रता के समय भारत न केवल एक विशाल और विविधतापूर्ण बल्कि गहरे तौर पर बिखरा हुआ देश भी था। ऐसे में देश को एकजुटता और प्रगति के लिए एक विस्तृत, गहन विचार–विमर्श पर आधारित और सावधानीपूर्वक सूत्रबद्ध किया गया संविधान लाजिमी था।

हमारे संविधान ने अतीत और वर्तमान के घावों पर मरहम लगाने और विभिन्न वर्गों, जातियों व समुदायों में बँटे भारतीयों को एक साझा राजनीतिक प्रयोग में शामिल करने में मदद की है। दूसरी ओर, इस संविधान ने लंबे समय से चली आ रही ऊँच नीच और अधीनता की संस्कृति में लोकतांत्रिक संस्थानों को विकसित करने का भी प्रयास किया है।

भारत के संविधान को दिसंबर 1946 से नवंबर 1949 के बीच सूत्रबद्ध किया गया। इस दौरान संविधान सभा में इसके मसविदे के एक–एक भाग पर लंबी चर्चाएँ चलीं। सविधान सभा के कुल ग्यारह सत्र हुए जिनमें 165 दिन बैठकों में गए। सत्रों के बीच विभिन्न समितियाँ और उपसमितियाँ मसविदे को सुधारने और सँवारने का काम करती थीं।

राजनीति शास्त्र को पढ़ने के बाद यह जान चुके है कि भारत का संविधान कैसा है। आजादी के बाद इस संविधान की क्या उपयोगिता और सार्थकता रही है। संविधान के इतिहास और उसके निर्माण के दौरान हुई गहनता परिचर्चा को जानेंगे। संविधान सभा में उठने वाली आवाजों को सुनने का प्रयास करें। जिससे उन प्रक्रियाओं का अंदाजा लग जाएगा। जिनके माध्यम से संविधान को सूत्रबद्ध किया गया और एक नए राष्ट्र की कल्पना साकार हुई।

शब्द बीज
भारतीय संविधता, विविधतापूर्ण, लोकतांत्रिक संस्थान, राजनीतिक प्रयोग, संविधान सभा।

उथल–पुथल का दौर

संविधान निर्माण से पहले के साल काफी उथल–पुथल वाले रहे थे। यह महान आशाओं का क्षण था और भीषण मोहभंग का भी। 15 अगस्त 1947 को भारत आजाद तो कर दिया गया किंतु इसके साथ ही इसे विभाजित भी कर दिया गया। लोगों की स्मृति में 1942 का **'भारत छोड़ो आंदोलन'** अभी भी जीवित था। जो ब्रिटिश राज के खिलाफ संभवतः सबसे व्यापक जनांदोलन था।

विदेशी सहायता से सशस्त्र संघर्ष के जरिए स्वतंत्रता पाने के लिए सुभाष चंद्र बोस द्वारा किए गए प्रयास को भी लोगों को बखूबी याद थे। 1946 के वसंत में बम्बई तथा अन्य शहरों में रॉयल

शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Year -1
Vol -8
June
2024

इंडियन नेवी (शाही भारतीय नौसेना) के सिपाहियों का विद्रोह भी लोगों को बार–बार आंदोलित कर रहा था। लोगों की सहानुभूति सिपाहियों के साथ थी। चालीस के दशक के आखिरी सालों में देश के विभिन्न भागों में मजदूरों और किसानों के आंदोलन हो रहे थे।

व्यापक हिंदू–मुस्लिम एकता इन जनांदोलनों का एक अहम पहलू थी। इसके विपरीत कांग्रेस और मुस्लिम लीग, दोनों प्रमुख राजनीतिक दल धार्मिक सौहार्द्र और सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने के लिए सुलह–सफाई की कोशिशों में नाकामयाब होते जा रहे थे। अगस्त, 1946 में कलकत्ता में शुरू हुई हिंसा के साथ उत्तरी और पूर्वी भारत में लगभग साल भर तक चलने वाला दंगे–फसाद और हत्याओं का लंबा सिलसिला शुरू हो गया था।

बर्बर हिंसा का यह वीभत्स नाच भीषण जनसंहारों के साथ हुआ। इसके साथ ही देश–विभाजन की घोषणा हुई। असंख्य लोग एक जगह से दूसरी जगह जाने लगे। 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता दिवस पर आनंद और उम्मीद का जो माहौल था वह उस समय के लोगों को कभी नहीं भूलेगा। भारत के बहुत सारे मुसलमानों और पाकिस्तान में रहने वाले हिंदुओं व सिखों के लिए यह एक निर्मम चुनाव का क्षण था। उनके सामने यह तत्क्षण मृत्यु तथा पीढ़ियों पुरानी जड़ों से उखड़ जाने के बीच चुनाव का क्षण था। करोड़ों शरणार्थी यहाँ से वहाँ जा रहे थे। मुसलमान पूर्वी व पश्चिमी पाकिस्तान की तरफ तो हिंदू और सिख पश्चिमी बंगाल व पूर्वी पंजाब की तरफ बढ़े जा रहे थे। उनमें से बहुत सारे कभी मंजिल तक नहीं पहुँचे, बीच रास्ते में ही मर गए।

नवजात राष्ट्र के सामने इतनी ही गंभीर एक और समस्या देशी रियासतों को लेकर थी। ब्रिटिश राज के दौरान उपमहाद्वीप का लगभग एक–तिहाई भू–भाग ऐसे नवाबों और रजवाड़ों के नियंत्रण में था जो ब्रिटिश ताज की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। उनके पास अपने राज्यों को जैसे चाहे चलाने की सीमित ही सही लेकिन काफी आजादी थी।

जब अंग्रेजों ने भारत छोड़ा तो इन नवाबों और राजाओं की संवैधानिक स्थिति बहुत अजीब हो गई। एक समकालीन प्रेक्षक ने कहा था कि **'कुछ महाराजा तो बहुत सारे टुकड़ों में बँटे भारत में स्वतंत्र सत्ता का सपना देख रहे थे।''** संविधान सभा की बैठकें इसी पृष्ठभूमि में संपन्न हो रही थीं। बाहर जो कुछ चल रहा था उससे संविधान सभा में होने वाली बहस और विचार–विमर्श भी भला अछूता कैसे रह सकता था?

संविधान सभा का गठन

संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर नहीं हुआ था। 1945–46 की सर्दियों में भारत के प्रांतों में चुनाव हुए थे। इसके पश्चात् प्रांतीय संसदों ने संविधान सभा के सदस्यों को चुना। नई संविधान सभा में कांग्रेस प्रभावशाली थी। प्रांतीय चुनावों में कांग्रेस ने सामान्य चुनाव क्षेत्रों में भारी जीत प्राप्त की। मुस्लिम लीग को अधिकांश आरक्षित मुस्लिम सीटें मिल गईं।

लेकिन लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार उचित समझा और एक अन्य संविधान बना कर उसने पाकिस्तान की माँग को जारी रखा। शुरुआत में समाजवादी भी संविधान सभा से परे रहे क्योंकि वे उसे अंग्रेजों की बनाई हुई संस्था मानते थे। वे मानते थे कि इस सभा का वाकई स्वायत्त होना असंभव है। इन सभी कारणों से संविधान सभा के 82 प्रतिशत सदस्य कांग्रेस पार्टी के ही सदस्य थे।

शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Year -1
Vol -8
June
2024

परंतु सभी कांग्रेस सदस्य एकमत नहीं थे। कई निर्णायक मुद्दों पर उनके मत भिन्न हो सकते थे। कई कांग्रेसी समाजवाद से प्रेरित थे तो कई अन्य जमींदारी के हिमायती थे। कुछ साम्प्रदायिक दलों के करीब थे लेकिन कई पक्के धर्मनिर्पेक्ष। राष्ट्रीय आंदोलन की वजह से कांग्रेसी वाद–विवाद करना और मत–भेदों पर बात–चीत कर समझौतों की खोज करना सीख गए थे। संविधान सभा में भी कांग्रेस सदस्यों ने कुछ ऐसा ही रुख अपनाया।

संविधान सभा में हुई चर्चाएँ जनमत से भी प्रभावित होती थीं। जब संविधान सभा में बहस होती थी तो विभिन्न पक्षों की दलीलें अखबारों में भी छपती थीं। तमाम प्रस्तावों पर सार्वजनिक रूप से बहस चलती थी। इस तरह प्रेस में होने वाली इस आलोचना और जवाबी आलोचना से किसी मुद्दे पर बनने वाली सहमति या असहमति पर गहरा असर पड़ता था। सामूहिक सहभागिता बनाने के लिए जनता के सुझाव भी आमंत्रित किए जाते थे। कई भाषाई अल्पसंख्यक अपनी मातृभाषा की रक्षा की माँग करते थे। धार्मिक अल्पसंख्यक अपने विशेष हित सुरक्षित करवाना चाहते थे और दलित जाति–शोषण के अंत की माँग करते हुए सरकारी संस्थाओं में आरक्षण चाहते थे। सभा में सांस्कृतिक अधिकारों एवं समाजिक न्याय के कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर चल रही सार्वजनिक चर्चाओं पर बहस हुई।

मुख्य आवाजों : संविधान के सन्दर्भ में

संविधान सभा में तीन सौ सदस्य थे। इनमें से छह सदस्यों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। इन छह में से तीन जवाहर लाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और राजेंद्र प्रसाद कांग्रेस के सदस्य थे। एक निर्णायक प्रस्ताव, "उद्देश्य प्रस्ताव" को नेहरू ने पेश किया था। उन्होंने यह प्रस्ताव भी पेश किया था कि भारत का राष्ट्रीय ध्वज "केसरिया, सफेद और गहरे हरे रंग की तीन बराबर चौड़ाई वाली पट्टियों का तिरंगा" झंडा होगा जिसके बीच में गहरे नीले रंग का चक्र होगा।

पटेल मुख्य रूप से परदे के पीछे कई महत्त्वपूर्ण काम कर रहे थे। उन्होंने कई रिपोर्टों के प्रारूप लिखने में खास मदद की। कई परस्पर विरोधी विचारों के बीच सहमति पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। राजेंद्र प्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष थे। सभा में चर्चा रचनात्मक दिशा ले और सभी सदस्यों को अपनी बात कहने का मौका मिले यह उनकी जिम्मेदारियाँ थीं।

कांग्रेस के इस त्रिगुट के अलावा प्रख्यात विधिवेत्ता और अर्थशास्त्री बी. आर. अम्बेडकर भी सभा के सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्यों में से एक थे। यद्यपि ब्रिटिश शासन के दौरान अम्बेडकर कांग्रेस के राजनीतिक विरोधी रहे थे, परंतु स्वतंत्रता के समय महात्मा गाँधी की सलाह पर उन्हें केंद्रीय विधि मंत्री का पद सँभालने का न्यौता दिया गया था। इस भूमिका में उन्होंने संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में काम किया। उनके साथ दो अन्य वकील भी काम कर रहे थे। एक गुजरात के के. एम. मुंशी थे। दूसरे मद्रास के अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर। दोनों ने ही संविधान के प्रारूप पर महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए।

इन छह सदस्यों को दो प्रशासनिक अधिकारियों ने महत्त्वपूर्ण सहायता दी। इनमें से एक बी.एन. राव थे। वह भारत सरकार के संवैधानिक सलाहकार थे। उन्होंने अन्य देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का गहन अध्ययन करके कई चर्चा पत्र तैयार किए थे। दूसरे अधिकारी एस.एन. मुखर्जी थे। इनकी भूमिका मुख्य योजनाकार की थी। मुखर्जी जटिल प्रस्तावों को स्पष्ट वैधिक भाषा में व्यक्त करने की क्षमता रखते थे।

शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Year -1 Vol -8 June 2024

अम्बेडकर के पास सभा में संविधान के प्रारूप को पारित करवाने की जिम्मेदारी थी। इस काम में कुल मिलाकर 3 वर्ष लगे और इस दौरान हुई चर्चाओं के मुद्रित रिकॉर्ड 11 भारी–भरकम खंडों में प्रकाशित हुए। यह लंबी मगर दिलचस्प प्रक्रिया थी। संविधान सभा के सदस्यों ने अपने विविध दृष्टिकोण बड़ी सफाई से पेश किए थे। उनकी प्रस्तुतियों में हम भारत के भविष्य से जुड़े कई मुद्दों पर परस्पर विरोधी विचार है। देश के भावी स्वरूप पर, भारतीय भाषाओं, राष्ट्र को कौन सी राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्थाएँ अपनानी चाहिए। नागरिकों के नैतिक मूल्य कैसे होने चाहिए और कैसे नहीं इन सभी प्रश्नों पर भी थे।

संविधान की दृष्टि : भारत के परिप्रेक्ष्य में

13 दिसंबर, 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा के सामने "उद्देश्य प्रस्ताव" पेश किया। यह एक ऐतिहासिक प्रस्ताव था जिसमें स्वतंत्र भारत के संविधान के मूल आदर्शों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। इसमें फ्रेमवर्क सुझाया गया जिसके तहत संविधान का कार्य आगे बढ़ना था। इसमें भारत को एक "स्वतंत्र सम्प्रभु गणराज्य" घोषित किया गया था। नागरिकों को न्याय, समानता व स्वतंत्रता का आश्वासन दिया गया था। जिसमें वचन दिया गया कि **"अल्पसंख्यकों, पिछड़े व जनजातीय क्षेत्रों एवं दलितों व अन्य पिछड़े वर्गों के लिए पर्याप्त रक्षात्मक प्रावधान किए जाएँगे।"** इन उद्देश्यों को रेखांकित करते हुए नेहरू ने भारतीय प्रयोग को एक व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत किया। इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि उनकी नजर बरबस अतीत में हुए उन ऐतिहासिक प्रयोगों की ओर जा रही है जिनमें अधिकारों के ऐसे दस्तावेज तैयार किए गए थे।

अतीत की ओर जाते हुए अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांति का हवाला देते हुए नेहरू भारत में संविधान निर्माण के इतिहास को मुक्ति व स्वतंत्रता के एक लंबे ऐतिहासिक संघर्ष का हिस्सा सिद्ध कर रहे हैं। वह भारतीय संघर्ष के ऐतिहासिक महत्त्व को अतीत के क्रातिकारिक क्षणों के समकक्ष बता रहे हैं। लेकिन नेहरू के कहने का आशय यह नहीं है कि उन घटनाओं को आज के लिए ब्लूप्रिंट मान लिया जाए। उन क्रांतियों के विचारों को बिना सोचे–विचारे भारत पर लागू किया जा सकता है। वह किसी खास तरह के लोकतंत्र को अपनाने का विरोध करते हैं और कहते हैं कि हमारे लोकतंत्र की रूपरेखा हमारे बीच होने वाली चर्चा से ही उभरेगी। वे इस बात पर जोर देते हैं कि भारत में संविधान के आदर्श और प्रावधान कहीं और से उठाए गए नहीं हो सकते।

उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि 'हम सिर्फ नकल करने वाले नहीं हैं। उनके शब्दों में, भारत में शासन की जो व्यवस्था स्थापित हो वह **'हमारे लोगों के स्वभाव के अनुरूप और उनको स्वीकार्य होनी चाहिए।'** पश्चिम से, वहाँ की उपलब्धियों और विफलताओं से सबक लेना जरूरी तो है लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि पश्चिमी समाजों को भी अन्य स्थानों पर हुए प्रयोगों से बहुत कुछ सीखना पड़ा था। लोकतंत्र की अपनी अवधारणा बदलनी पड़ी थी। भारतीय संविधान का उद्देश्य यह होगा कि लोकतंत्र के उदारवादी विचारों और आर्थिक न्याय के समाजवादी विचारों का एक–दूसरे में समावेश किया जाए।

लोगों की इच्छा भारतीय संविधान के अनुरूप

संविधान सभा के कम्युनिस्ट सदस्य सोमनाथ लाहिड़ी को संविधान सभा की चर्चाओं पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का साया दिखाई देता था। उन्होंने सदस्यों तथा आम भारतीयों से आग्रह किया कि वे साम्राज्यवादी शासन के प्रभाव से खुद को पूरी तरह आजाद करें। 1946–47 के जाड़ों में जब संविधान सभा में चर्चा चल रही थी तो अंग्रेज भारत में ही थे।

शोध साहित्य SHODH SAHITYA
INTERNATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित बहुविषयक मासिक ई-शोध पत्रिका)
E-ISSN 2584-2447
Impact Factor – SJIF 2024 = 3.621
Year -1
Vol -8
June
2024

जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार शासन तो चला रही थी परंतु उसे सारा काम वायसराय तथा लंदन में बैठी ब्रिटिश सरकार की देखरेख में करना पड़ता था। लाहिड़ी ने अपने साथियों को समझाया कि संविधान सभा अंग्रेजों की बनाई हुई है। वह 'अंग्रेजों की योजना को साकार करने का काम कर रही है। नेहरू ने स्वीकार किया कि ज्यादातर राष्ट्रवादी नेता एक भिन्न प्रकार की संविधान सभा चाहते थे। एक लिहाज से यह भी सही था कि ब्रिटिश सरकार का 'उसके गठन में काफी हाथ था' और उसने सभा के कामकाज पर कुछ शर्तें भी लगा दी थीं। 'परंतु', नेहरू ने कहा, 'आपको उस स्रोत को नजर अंदाज नहीं करना चाहिए जहाँ से इस सभा को शक्ति मिल रही है।

सरकारें सरकारी कागजों से नहीं बनतीं। सरकार जनता की इच्छा को अभिव्यक्ति होती है। यहाँ इसलिए जुटे हैं क्योंकि हमारे पास जनता की ताकत है और हम उतनी दूर तक ही जाएँगे जितनी दूर तक लोग हमें ले जाना चाहेंगे। फिर चाहे वे किसी भी समूह या पार्टी से संबंधित क्यों न हों। इसलिए भारतीय जनता के दिलों में समायी आकांक्षाओं और भावनाओं को हमेशा अपने जेहन में रखना चाहिए। उन्हें पूरा करने का प्रयास करना चाहिए।

संविधान सभा उन लोगों की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का साधन मानी जा रही थी जिन्होंने स्वतंत्रता के आंदोलनों में हिस्सा लिया था। लोकतंत्र, समानता तथा न्याय जैसे आदर्श उन्नीसवीं सदी से भारत में सामाजिक संघर्षों के साथ गहरे तौर पर जुड़ चुके थे। जब उन्नीसवीं शताब्दी में समाज सुधारकों ने बाल–विवाह का विरोध किया और विधवा–विवाह का समर्थन किया तो वे सामाजिक न्याय का ही अलख जगा रहे थे।

जब विवेकानंद ने हिंदू धर्म में सुधार के लिए मुहिम चलाई तो वह धर्म को और ज्यादा न्यायसंगत बनाने का ही प्रयास कर रहे थे। जब महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने दलित जातियों की पीड़ा का सवाल उठाया या कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों ने मजदूरों और किसानों को एकजुट किया तो वे भी आर्थिक और सामाजिक न्याय के लिए ही जूझ रहे थे। एक दमनकारी और अवैध सरकार के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन अपरिहार्य रूप से लोकतंत्र व न्याय का, नागरिकों के अधिकारों और समानता का संघर्ष भी था।

जैसे–जैसे प्रतिनिधित्व की माँग बढ़ी, अंग्रेजों को चरणबद्ध ढंग से संवैधानिक सुधार करने पड़े। प्रांतीय सरकारों में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए कई कानून (1909, 1919 और 1935) पारित किए गए। 1919 में कार्यपालिका को आंशिक रूप से प्रांतीय विधायिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। 1935 के 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट' के अंतर्गत उसे लगभग पूरी तरह विधायिका के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। जब गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के तहत 1937 में चुनाव हुए तो 11 में से 8 प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी। पहले के संवैधानिक बदलावों तथा 1946 से अगले तीन साल के दौरान घटी घटनाओं को स्वाभाविक रूप से एक ही प्रक्रिया का हिस्सा नहीं है। संवैधानिक प्रयोग एक प्रतिनिध्यात्मक सरकार के लिए लगातार बढ़ती माँग के जवाब में थे। जबकि विभिन्न कानूनों (1909, 1919 और 1935) को पारित करने की प्रक्रिया में हैं। इसमें भारतीयों की कोई प्रत्यक्ष हिस्सेदारी नहीं थी। उन्हें औपनिवेशिक सरकार ने ही लागू किया था।

प्रांतीय निकायों का चुनाव करने वाले निर्वाचन मंडल का दायरा समय के साथ फैलता जा रहा था। सन् 1935 में यह अधिकार वयस्क आबादी के 10–15 प्रतिशत हिस्से तक ही सीमित था। तब तक सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की व्यवस्था नहीं थी। 1935 के कानून के तहत निर्वाचित विधायिकाएँ

औपनिवेशिक शासन के ढाँचे में काम कर रही थीं। अंग्रेजों द्वारा नियुक्त गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थीं। 13 दिसंबर 1946 को नेहरू जिस कल्पना की बात कर रहे थे। वह एक स्वतंत्र संप्रभु भारतीय गणराज्य के संविधान की कल्पना थी।

अधिकारों का निर्धारण

नागरिकों के अधिकार किस तरह निर्धारित किए जाएँ? क्या उत्पीड़ित समूहों को कोई विशेष अधिकार मिलने चाहिए? अल्पसंख्यकों के क्या अधिकार हों? वास्तव में अल्पसंख्यक किसे कहा जाए? जैसे–जैसे संविधान सभा के पटल पर बहस आगे बढ़ी, यह साफ हो गया कि इनमें से किसी भी सवाल का कोई ऐसा उत्तर मौजूद नहीं है जिस पर पूरी सभा सहमत हो।

इन सवालों के जवाब विचारों में टकराव और व्यक्तिगत मुठभेड़ों से ही पैदा होने थे। अपने उद्घाटन भाषण में नेहरू ने **"जनता की इच्छा"** का हवाला दिया था। और कहा था कि संविधान निर्माताओं को **"जनता के दिलों में समायी आकांक्षाओं और भावनाओं"** को पूरा करना है। यह कोई आसान काम नहीं था। जैसे–जैसे आजादी की उम्मीद पैदा हुई, विभिन्न समूह अलग–अलग तरह से अपनी इच्छाएँ व्यक्त करने लगे। इन सभी अभिव्यक्तियों पर बहस करना जरूरी था। परस्पर विरोधी विचारों के बीच किसी समाधान पर पहुँचना और एक आम सहमति पर पहुँचना जरूरी था।

निष्कर्ष

27 अगस्त 1947 को मद्रास के बी. पोकर बहादुर ने पृथक निर्वाचिका बनाए रखने के पक्ष में एक प्रभावशाली भाषण दिया। बहादुर ने कहा कि अल्पसंख्यक सब जगह होते हैं। उन्हें हम चाह कर भी नहीं हटा सकते। हमें जरूरत एक ऐसे राजनीतिक ढाँचे की है जिसके भीतर अल्पसंख्यक भी औरों के साथ सद्भाव के साथ जी सकें और समुदायों के बीच मतभेद कम से कम हों। इसके लिए जरूरी है कि राजनीतिक व्यवस्था में अल्पसंख्यकों का पूरा प्रतिनिधित्व हो, उनकी आवाज सुनी जाए और उनके विचारों पर ध्यान दिया जाए। देश के शासन में मुसलमानों की एक सार्थक हिस्सेदारी सुनिश्चित करने के लिए पृथक निर्वाचिका के अलावा और कोई रास्ता नहीं हो सकता। बहादुर को लगता था कि मुसलमानों की जरूरतों को गैर–मुसलमान अच्छी तरह नहीं समझ सकते, न ही अन्य समुदायों के लोग मुसलमानों का कोई सही प्रतिनिधि चुन सकते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रसाद, विरकेश्वरः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, नई दिल्लीः ज्ञानदा प्रकाशन, 2013
2. नारंग, ए.एसः भारतीय शासन एवं राजनीति, (नई दिल्लीः गीतांजलि पब्लिशिंग हाऊस), 2015.
3. गाँधी, मोहन दास करमचन्दः हमारे गाँवों का पुर्ननिर्माण, (अहमदाबाद नव जीवन प्रकाशन मन्दिर), 1957.
4. राय, ओ.पी.ः उत्तर प्रदेश ग्रामसभा, ग्राम पंचायत एवं भूमिप्रबन्ध समिति मैनुअल (नयी पंचायती राज व्यवस्था पर आधारित), इलाहाबाद ला काटेज, 2011
5. मैथ्यू, जार्जः "पंचायत राज इन इण्डियाः नई दिल्ली, फ्राम लेजिसलेशन द मुवमेन्ट" 1994
6. इन्स्टीट्यूट आफ सोशल साइंसेज, बी–7/18 सफदरगंज इक्लेव दूबे, एस.सी., एक भारतीय ग्राम, (नई दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाऊस), 1975